वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी द्वारा लिखित आध्यात्मिक पत्र

पत्रांक-३५७

बंबई, चैत्र वदी ५, रवि, १९४८

हृदयरूप श्री सुभाग्य,

आपके एकके बाद एक बहुतसे सविस्तर पत्र मिला करते हैं, जिनमें प्रसंगोपात्त शीतल ज्ञानवार्ता भी आया करती है। परंतु खेद होता है कि उस विषयमें प्राय: हमसे अधिक लिखना नहीं हो सकता।

सत्संग होनेके प्रसंगकी इच्छा करते हैं, परंतु उपाधियोगके उदयका भी वेदन किये बिना उपाय नहीं है। चित्त बहुत बार आपमें रहा करता है। जगतमें दूसरे पदार्थ तो हमारे लिये कुछ भी रुचिकर नहीं रहे हैं। जो कुछ रुचि रही है वह मात्र एक सत्यका ध्यान करनेवाले संतमें, जिसमें आत्माका वर्णन है ऐसे सत्शास्त्रमें, और परेच्छासे परमार्थके निमित्तकारण ऐसे दान आदिमें रही है। आत्मा तो कृतार्थ प्रतीत होता है।

*

पत्रांक-३५८

बंबई, चैत्र वदी ५, रवि, १९४८

जगतके अभिप्रायकी ओर देखकर जीवने पदार्थका बोध पाया है। ज्ञानीके अभिप्रायकी ओर देखकर पाया नहीं है। जिस जीवने ज्ञानीके अभिप्रायसे बोध पाया है उस जीवको सम्यग्दर्शन होता है।

विचारसागर अनुक्रमसे (प्रारंभसे अंत तक) विचार करनेका अभ्यास अभी हो सके तो करना योग्य है।

हम दो प्रकारका मार्ग जानते हैं। एक उपदेशप्राप्तिका मार्ग और दूसरा वास्तविक मार्ग। विचारसागर उपदेशप्राप्तिके लिये विचारणीय है।

जब हम जैनशास्त्र पढ़नेके लिये कहते हैं तब जैनी होनेके लिये नहीं कहते; इसी तरह अन्य शास्त्र पढ़नेके लिये कहते है तो अन्य होनेके लिये नहीं कहते; मात्र जो कहते हैं वह आप सबको उपदेश लेनेके लिये कहते हैं। जैनी और वेदांती आदिके भेदका त्याग करें। आत्मा वैसा नहीं है ।

*

पत्रांक-३५९

बंबई, चैत्र वदी ८, १९४८

हृदयरूप सुभाग्य,

आज एक पत्र प्राप्त हुआ है।

पत्र पढ़नेसे और वृत्तिज्ञानसे, अभी आपको कुछ ठीक तरहसे धीरजबल रहता है यह जानकर संतोष हुआ है।

किसी भी प्रकारसे पहले तो जीवका अहंत्व दूर करना योग्य है। जिसका देहाभिमान गलित हुआ है उसके लिये सब कुछ सुखरूप ही है। जिसे भेद नहीं है उसे खेदका सम्भव नहीं है। हरीच्छामें दृढ़ विश्वास रखकर आप प्रवृत्ति करते हैं, यह भी सापेक्ष सुखरूप है। आप जो कुछ विचार लिखना चाहते हैं उन्हें लिखनेमें भेद नहीं रखते, इसे हम भी जानते हैं।

*

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४९, अंक-३०९, वर्ष-२५, सितंबर-२०२३

श्रावण शुक्ल ५, शनिवार, दि. २३-७-१९६६, योगसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन अंश, गाथा-९९,१०० प्रवचन-४२

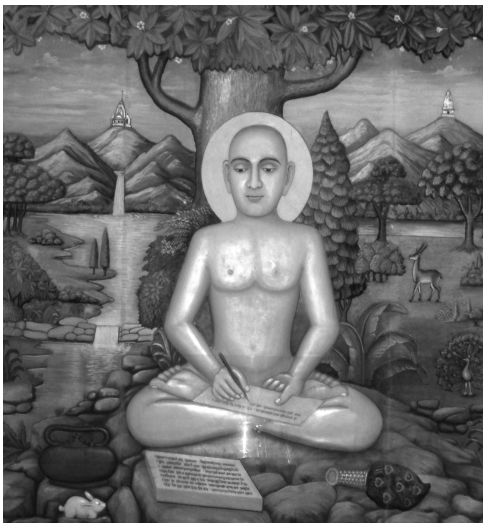

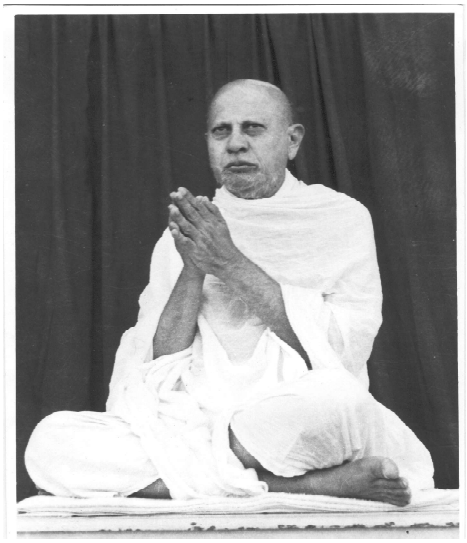

सामायिक चारित्र कथन

सव्वे जीवा णाणमया जो सम-भाव मुणेइ।
सो सामाइउ जाणि फुडु जिणवर एम भणेइ।। ९९।।
सर्व जीव हैं ज्ञानमय, ऐसा जो समभाव।
सो सामायिक जानिये, भाषे जिनवर राव।।

अन्वयार्थ - (सव्वे जीवा णाणमया) सर्व ही जीव ज्ञानस्वरूपी हैं - ऐसा (जो समभाव मुणेइ) जो कोई समभाव को मनन करता है (सो फुडु सामाइउ जाणि) उसी के प्रगटपने सामायिक जानो (एम जिणवर भणेइ) ऐसा श्री जिनेन्द्र कहते हैं।

यह 'योगसार' शास्त्र है, इसमें ९९ वीं गाथा। चारित्र अर्थात् समभाव किसे कहना? और समभाव किसे होता है? और समभाव कैसे होता है? समझ में आया? किसे होता है? कैसे होता है? यह कहते हैं। देखो!

सव्वे जीवा णाणमया जो सम-भाव मुणेइ।
सो सामाइउ जाणि फुडु जिणवर एम भणेइ।।९९।।

'**सव्वे जीवा णाणमया....**' देखो! समभाव उसे होता है कि जो सब जीवों को ज्ञान में देखता है। 'सर्व जीव है ज्ञानमय' - यह इसका अर्थ है। 'श्रीमद्' में ऐसा आता है, 'सर्व जीव है सिद्ध समान'। यह योगीन्दुदेव आचार्य (कहते हैं), सर्व जीव है ज्ञानमय। ऐसे स्वयं को भी ज्ञान में देखने से समभाव प्रगट होता है। स्वयं ज्ञानमय है, ज्ञानमय अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा के स्वभावमय है - ऐसा देखने से समभाव-वीतरागता की पर्याय उत्पन्न होती है और दूसरे सब जीव ज्ञानमय है - ऐसा देखने से, उनकी कर्म के वश विविधता देखे तो यह

ठीक है, यह अठीक है - ऐसे राग-द्वेष हों, परन्तु कर्म के वश हुई उनकी विविधता उसे न देखने से वे सब ज्ञानमय हैं, सब चैतन्यमय हैं; इस प्रकार दूसरे को भी चैतन्यमय, ज्ञानमय देखने से कर्म के वश हुई उनकी विचित्रता में यह ठीक है, अठीक है - ऐसी बुद्धि, ज्ञानमय देखनेवाले को नहीं रहती। समझ में आया?

सर्व जीव है ज्ञानमय। देखो! सर्व लिये, हाँ! स्वयं तो है परन्तु उसका अर्थ यह हुआ। मैं एक ज्ञानमय जानने-देखनेस्वरूप हूँ - ऐसी जिसने दृष्टि की, उसे स्वयं में भी समभाव की वीतरागता की उत्पत्ति होती है। वह समस्त जीवों को द्रव्य-तत्त्वदृष्टि से देखे तो वे सब भी भगवान ज्ञानमय है; इसलिए उनकी विषमता को ठीक-अठीक रूप नहीं देखता। विषमता कर्म के आधीन, ज्ञानवरणीय के आधीन, कम-ज्यादा ज्ञानपना हो; दर्शनावरणीय के आधीन-क्षयोपशम चक्षु-अचक्षु का कम-ज्यादा हो; मोहनीय के आधीन रागादि, मिथ्याभ्रान्ति आदि हो; अन्तराय के आधीन स्वयं वश होकर करे, हाँ! विकार आदि कमजोरी दिखे या आयुष्य के आधीन (कोई) दीर्घ आयुष्य और कोई थोड़े आयुष्यवाला दिखे; नाम के आधीन भिन्न-भिन्न, सुन्दर-असुन्दर, सुडौल-अडौल - ऐसे शरीर के आकार दिखें परन्तु ये तो दूसरी भिन्न चीज है। गोत्र के आधीन हुई नीच और उच्चकुल की अवस्था देखे तो पर्यायदृष्टि से देखना है, यह जानने का है। समझ में आया? वेदनीय के निमित्त से किसी को धनवान-सधन, निर्धन देखे तो वह तो संयोग से देखना (हुआ)। वह तो जानने योग्य है।

वस्तु ज्ञानमय है - ऐसे देखने से संयोग के आधीन किसी की सधनता, निर्धनता की विशेषता को जाननेयोग्य मानकर, उसमें यह ठीक-अठीक करने जैसा नहीं रहता। कहो! यह सेठ है और यह गरीब है, वह तो कर्म के आधीन, वेदनीय के आधीन, प्राप्त संयोग के आधीन, देखने की बात है। परन्तु संयोग के आधीन न देखे और सब आत्मा ज्ञानमय चैतन्य प्रभु है तो इस दृष्टि से सबको देखने पर भी ठीक-अठीक के संयोग से उत्पन्न होता राग-द्वेष धर्मी को नहीं होता है। समझ में आया?

'सव्वे जीवा णाणमया....' अहा! कितनी बात करते हैं! अभव्य हो या चाहे जो हो; निश्चय से परम सत् प्रभु ज्ञानमय ही आत्मा है। उसमें कम-ज्यादा ऐसा शब्द नहीं। ज्ञान की हीनाधिक (दशा), वह भी सर्व ज्ञानमय में वह नहीं आती। समझ में आया? ऐसे ही अपने में भी ज्ञान की हीनाधिकता नहीं आयी। मैं तो ज्ञानमय हूँ, चैतन्यबिम्बस्वरूप हूँ - ऐसी दृष्टि होने पर उसे अन्तर के आश्रय में वीतरागता की भी उत्पत्ति होती है। उसे सामायिक और समभाव कहा जाता है। समझ में आया?

सर्व जीव, **'सभी ही जीव....'** ऐसा लिखा है। ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा। आहा...हा...! सबको जब ज्ञानस्वरूपी देखे तो स्वयं को भी ज्ञानस्वरूपी देखता है। समझ में आया? अपने में भी कर्म के निमित्त के वश से दशाओं को जाननेयोग्य - पर्यायदृष्टि से जाननेयोग्य जानता हुआ, सर्व आत्मा ज्ञानमय सर्व जीव हैं। मैं भी ज्ञानमय हूँ - ऐसी अन्तर की दृष्टि होने पर उसे समभाव और वीतरागता की ही उत्पत्ति होती है। समझ में आया?

'जो कोई समभाव का मनन करता है...' ऐसा। **'मुणेइ'** (अर्थात्) जानता है, वास्तव में। इस प्रकार जो ज्ञानमय जानकर, समभाव को उत्पन्न करता है, **'उसे ही प्रगट रूप से... फुडु'** है न? **'सामायिक जानो...'** प्रगट सामायिक। शक्तिरूप तो सामायिक है ही - ऐसा कहते हैं। भाई! समभाव तो उसका स्वरूप ही है। ज्ञानमय कहा, उसका अर्थ भी समभाव स्वरूप उसका है। ज्ञानमय कहो या वीतराग ज्ञानस्वरूप कहो, समज्ञानमय यह तो उसका स्वरूप ही है परन्तु इस प्रकार अन्दर नजर पड़ने पर, उसका ज्ञान होने पर प्रगट समता की दशा प्रगट होती है। समझ में आया? ओ...हो...!

व्यवहार से यदात्वे जाना हुआ प्रयोजनवान है। देखो न! कहाँ शैली रखी है। समझ में नहीं आया? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने ग्यारहवीं गाथा में ऐसा कहा कि **'भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो'**

(समयसार गाथा-११) भाई! भूतार्थ अर्थात् ज्ञानमय कहो, भूतार्थ त्रिकाल एक स्वरूप कहो, उसके आश्रय से आत्मा को सम्यग्दृष्टि, समभाव की सम्यग्दृष्टि प्रगट होती है और उसके ही आश्रय से चारित्ररूपी समता का भाव (प्रगट होता है)। **'भूदत्थमस्सिदो' 'भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो' 'भूदत्थमस्सिदो खलु चारित्रवंत हवदि जीवो'** (कहा है)। पद्मनन्दि आचार्य में यह है। इसी की इसी गाथा को यहाँ **'सम्मादिट्ठी हवदि जीवो'** कहा है। पद्मनन्दि आचार्य में ऐसा (आता है कि) **'भूदत्थमस्सिदो खलु'** यति चारित्रभाव होता है - ऐसा लिखा है। वहाँ ऐसा है, शब्द यह लिया है। पद्मनन्दि आचार्य... मूल तो समयसार में सब बीज हैं। शास्त्र, आचार्य दूसरे सब मानों पूरे उसमें बीज भरे हैं। थोड़ा तो, बहुत हुआ है अब।

'भूदत्थं' वहाँ यह कहा था, यह गाथा एक बार कहीं से निकाली थी, वहाँ यति शब्द रखा है। भूतार्थ के आश्रय से यति इतना प्रगट होता है - ऐसा वहाँ कहा है। इसमें भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दृष्टिपना प्रगट होता है (ऐसा कहा) परन्तु उसका अर्थ यह है कि जो वस्तु ज्ञानमय अर्थात् ज्ञानमय अर्थात् वीतरागतामय अर्थात् निर्विकल्पस्वभाव समरूपी एक स्वरूप है, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है, सम्यग्ज्ञान होता है, सम्यक्चारित्र होता है, शुक्लध्यान होता है, केवलज्ञान होता है; इस प्रकार सभी जीव को देखने से कहीं राग-द्वेष करना नहीं रहता है।

जो अनन्त आत्माओं की आठ कर्मों के वश विषमता, विविधता, अनेकता, जो ज्ञात होती है, वह कहीं उनका मूल स्वरूप नहीं है। समझ में आया? सभी ज्ञानमय प्रभु हैं न! आहा...हा...! उसे फिर यह ठीक और अठीक करने की वृत्ति ही नहीं रही। समझ में आया? व्यवहार और पर्यायदृष्टि से देखने की आँख बन्द करके वस्तु के स्थायी असली स्वभाव को देखने की दृष्टि से देखे तो स्वयं को भी ज्ञानमय देखे और दूसरे सबको भी समभाव से भरपूर भगवान ही देखे। इसलिए कहीं विषमता करने का (नहीं रहा) क्योंकि उसके ज्ञानमय में विषमता नहीं, इसलिए इसे विषमता करने का कारण नहीं रहता है। समझ में आया? अद्भुत भाई! सामायिक की व्याख्या! योगीन्दुदेव यह सामायिक की व्याख्या करते हैं। आहा...हा...! फिर आधार देते हैं, **'जिणवर एम भणेइ'** हाँ! **'जिणवर एम भणेइ।'** स्वयं समभाव से कर्ता होकर हो सकता है।

(मैं) ज्ञानमय हूँ। (ऐसे ही) सभी भगवान ज्ञानमय है, ऐसा निश्चयदृष्टि से कर्ता आत्मा होकर स्वयं के ज्ञानमय आत्मा के समभाव को प्रगट करे - ऐसे दूसरे सभी आत्माएँ ज्ञानमय है; इसलिए विषमता के प्रकार दिखने पर भी अभिन्नरूप से सब भगवान ज्ञान है। ऐसा भी अन्दर पुरुषार्थ की दृष्टि से विषमता का लक्ष्य छोड़कर समभावी आत्मा सभी ज्ञानमय है ऐसा पुरुषार्थ से देखने पर उसे समभाव प्रगट होता है। कहो, समझ में आया? इसमें? है? देखो! सामायिक किस प्रकार ली है! हमने उसे यह किया है, हमने यह देखा था 'सर्व जीव है ज्ञानमय' इसका अर्थ किया है। यह श्लोक है न वे सब? तुम्हारे में है या नहीं? क्या है? देखो! **'सर्व जीव है ज्ञानमय...'** श्लोक हैं। लो! अपने सज्झाय होती है, नौ सज्झाय में उसकी सज्झाय है या नहीं? हैं? योगसार ..

सर्व जीव हैं ज्ञानमय, जाने समता होय।
वह सामायिक जिन कहे, प्रगट करे भवपार।।

इसमें चार-चार बोल रखे हैं, भाई! प्रत्येक में चार रखे हैं।

सव्वे जीवा णाणमया जो सम-भाव मुणेइ।
सो सामाइउ जाणि फुडु जिणवर एम भणेइ।। ९९।।
सव्वे जीवा णाणमया, य सम-भाव ममते।
तत सामायउ जाणि स्फूटम्, जिणवर एम भणेइ।।
सर्व जीव हैं ज्ञानमय, जाने समता होय।
वह सामायिक जिन कहे, प्रगट करे भवपार।।
सर्व जीव छे ज्ञानमय, जाणे समता भार;
ते सामायिक जिन कहे, प्रगट करे भव पार।।

समभाव होता है, वहाँ भव का पार ही होता है -

ऐसा उसका फल बताया। समभाव का फल ही भव का अभाव, ऐसा। एक-एक श्लोक के पण्डितजी ने चार-चार अर्थ किये थे। यह एक 'लालन'? वृद्ध (थे), पिच्यानवें वर्ष में स्वर्गस्थ हो गये। बहुत अभ्यास, बहुत अभ्यास, पन्द्रह वर्ष की उम्र से पिच्यानवें वर्ष तक अभ्यास। दृष्टि विपरीत थी, फिर यहाँ रहते थे, बारह महीने रहे थे। सब अभ्यास। सोलह वर्ष कहते थे। सोलह वर्ष से शास्त्र का अभ्यास, शास्त्र अभ्यास, वह पिच्यानवें (वर्ष तक) संवत् २००९ के साल में स्वर्गस्थ हो गये। यहाँ बारह-बारह महीने रहते थे, यहाँ बैठते थे, वृद्ध थे, फिर तत्त्व की बात आवे तब कहें अरे...रे...! खिचड़ा किया है। फिर रोवे... रोवे... रोवे, हाँ! ऐसी सरलता! उन्होंने यह अर्थ बनाया है। इस श्लोक के उन्होंने सब अर्थ बनाये हैं। कितना ही घोटाला भी अन्दर होगा, परन्तु इतनी ही व्याख्या ठीक है। कितना ही घोटाला अन्दर डाला है, क्योंकि मूल तो श्वेताम्बर थे और पहली दृष्टि की फेरफार थी, उसमें से इसमें अर्थ किये, पूरी पुस्तक है 'स्वानुभवदर्पण' उसका नाम है। स्वानुभवदर्पण है, वह योगीन्दुदेव के दोहों के श्लोक चार-चार बोल हैं 'सर्व जीव है ज्ञानमय'.... 'प्रगट करे भव पार' नहीं होगा इसमें... उसमें है, हिन्दी में है। **'जिनवर एम भणेइ'** यह तो हिन्दी में भी है। सर्व जीव हैं ज्ञानमय, जाने समताभार, सो सामायिक जिन कहे प्रगट करे भव पार। हिन्दी में किया है इसका। उसमें नहीं होगा।

मुमुक्षु - सर्व जीव हैं ज्ञानमय, ऐसा जो समभाव।
सो सामायिक जानिये, भाषे जिनवर राव।।

उत्तर - यह शब्दार्थ किया है, ठीक, पाठ का शब्दार्थ। भाई ने किया है। अपने पण्डित ने किया है, पाठ को स्पर्श कर। समझ में आया?

यह सामायिक किसे कहना, इसमें सम्यग्दर्शन आ गया, सम्यग्ज्ञान आ गया और वीतरागभाव तीनों आ गये। भगवान आत्मा ज्ञानमय है अर्थात् अल्पपना, विकारपना, या संयोगपना उसके स्वभाव में नहीं है। ऐसी जो अन्तर स्वभावदृष्टि होना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसा जो ज्ञानमय, आनन्दमय... यहाँ ज्ञानमय प्रधान परमभावग्राहकनय से बात की है। ज्ञान परमभावग्राहक है, परमभाव है, यह वस्तु दूसरे की अपेक्षा। क्योंकि ज्ञान स्वयं सविकल्प-स्वपर को जाननेवाला गुण है और दूसरे गुण अस्ति रखते हैं परन्तु स्वयं कौन है और पर कौन है? उन्हें नहीं जानते। इसलिए सभी गुणों को निर्विकल्प कहा जाता है। निर्विकल्प यह अस्ति रखता है। अपनी अस्ति को और पर की अस्ति को वे जानते नहीं हैं।

भगवान आत्मा का ज्ञान स्वयं अपने को जानता है और उसके अनन्त गुणों को भी जानता है, इसलिए उस गुण को सविकल्प कहकर, साकार कहकर, उसे असाधारण परमभावग्राहक कहा गया है। 'आलापपद्धति' में उसका नय लिया है। परमभावग्राहकनय। पण्डितजी! आलापपद्धति में। समझ में आया? इस अपेक्षा से यहाँ कहा है। परमभाव अकेला ज्ञानमय भगवान, उसका ज्ञान वह ज्ञान और परमज्ञानमय आत्मा, ऐसा अन्तर में दृष्टि ज्ञान करके स्थिर होने से... क्योंकि परम ज्ञानमय है, उसे तो ज्ञातादृष्टारूप रहना ही उसका स्वरूप हुआ, इसलिए वहाँ वीतरागता और सामायिक अर्थात् समताभाव की उत्पत्ति (हुई)। परमज्ञानमय आत्मा है - ऐसा अन्तर निर्णय होने पर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और समभाव तीनों उसमें से उत्पन्न होते हैं। समझ में आया? क्या है? सुगनचन्द्रजी! कहाँ गया यह सब? चक्की का पड़ और .... हैं? ज्ञेय में। चक्की से दलना, ऐसा करना और वैसा करना.... वहीं के वहीं फँसे। गेहूँ को वहाँ दलना और फिर धोना... परन्तु अब यह तो सहज देह की, जड़ की क्रिया उसके कारण से होनी हो तो होती है; आत्मा उसका कर्ता नहीं है। वहाँ फँसे। बराबर क्रिया ऐसी करनी, हाँ! निर्दोष आहार, इसलिए बेचारे का समय जाता है। एक व्यक्ति कहता था, महाराज! तुम यह बात करते हो परन्तु हम तो आश्रम में रहते हैं,

(इसलिए) चावल शोधना और गेहूँ शोधना, उसमें रहना (पड़ता है)। हमारे यह समझना, सुनना, विचारना, कब? तीन-तीन घण्टे वहाँ रहें कौन? परशुरामजी... परशुरामजी कहते थे।

मुमुक्षु - ....

उत्तर - सविकल्प है। सविकल्प का अर्थ क्या? राग नहीं। सविकल्प का अर्थ स्व-पर को जाने, उसका नाम सविकल्प है। सविकल्प का अर्थ राग नहीं। स्व-पर को जाने, उसका नाम ही सविकल्प है। दूसरे (गुण) स्व-पर को नहीं जानते, इसलिए दूसरे को निर्विकल्प कहते हैं। विकल्प अर्थात् राग की अपेक्षा की बात नहीं है। केवलज्ञान भी सविकल्प है। सविकल्प का अर्थ स्व-पर को जानना, उसका नाम सविकल्प है। यह तो प्रवचनसार में आता है न? अर्थाकार - स्व-पर के अर्थाकार परिणमित होना, वही सविकल्प है। सविकल्प (अर्थात्) राग-फाग की यहाँ बात नहीं है। समझ में आया?

स्व-पर प्रतिच्छेदक दो को जाननेवाला उसका नाम सविकल्प का अर्थ यह राग नहीं। स्व-पर को जानने का भाव, उसका नाम ही सविकल्प है। यह सविकल्प, राग से निर्विकल्प है। राग से निर्विकल्प है परन्तु स्व-पर को जानने के आकाररूप परिणमित होना उसका नाम ही सविकल्प है। यह तो अपना स्वभाव है। सिद्ध का केवलज्ञान भी सविकल्प है। समझ में आया? आहा...हा...!

यहाँ यही कहते हैं। भगवान! सर्व जीव ज्ञानमय है - ऐसा जानना कहा न? भाई! स्वयं जाने और पर को जाने, दोनों आया। मैं भी ज्ञानमय हूँ तो ज्ञान का स्वभाव है कि मैं भी ज्ञानमय हूँ, सभी ज्ञानमय है - ऐसा उनका जानना... जानना.. दोनों का, यह कहीं राग का कारण नहीं है; यह तो उसका स्वभाव है। स्व-पर को जाननेरूप परिणमना, होना वह ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है। समझ में आया? इससे वह सविकल्पज्ञान ज्ञातारूप मैं यह ज्ञान हूँ - ऐसा जो पर्याय में ज्ञातापना प्रगट हुआ, वह पर्याय स्व-पर प्रकाशक प्रगटी परन्तु वह रागरहित समताभाव की प्रगटी। समझ में आया? आहा...हा...!

देखो न! आचार्य ने इसलिए कहा! **'सव्वे जीवा णाणमया, जो सम-भाव मुणेइ'** ऐसा लिया है न वापस? ऐसा नहीं कि अकेले को जाने, ऐसा उसमें नहीं लिया परन्तु यह तो उसका स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। मैं ज्ञानमय ऐसा जाना तब भी श्रद्धा, ज्ञान, और शान्ति ही उत्पन्न हुई और सभी जीवों के ज्ञान का स्वभाव है कि स्व-पर को जानना - इतना ही उनका उस सामर्थ्य का सत्व है। वह राग नहीं, इसलिए ऐसे बाहर के सभी ज्ञान में आये निश्चय से उसे यहाँ देखो ऐसे निश्चय से दूसरों को देखो। उनकी विषमता और पर के आधीन होती दशाएँ उन्हें न देखने से, इसे देखने से विषमता के कारण यह ठीक-अठीक जीव है - ऐसा उसे राग-द्वेष उत्पन्न होने का स्थान नहीं रहता; और स्वयं में भी जब ज्ञानमय - ऐसा आत्मा है - ऐसा अन्तर में जानने से उसे भी राग और द्वेष उत्पन्न होना, हीन ज्ञान है इसलिए हीन हूँ, अधिक ज्ञान है, इसलिए बड़ा, यह भी उसमें नहीं रहता। समझ में आया?

'उसी के प्रगटरूप से सामायिक जानो - ऐसा श्री जिनेन्द्र कहते हैं।' आहा...हा...! आचार्यों को भी जिनेन्द्र को रखना पड़ा है, हाँ! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव... तो सर्वज्ञ नहीं जानते यह? सब को नहीं जानते? और सबको जानना वह तो ज्ञानमय पर्याय है। सबको जानना, वह विकल्प नहीं; वैसे ही सब को जानना अर्थात् परज्ञानमय दशा है ऐसा नहीं है। सब को जानना वह ज्ञानमय, आत्मज्ञानमय जीव की दशा है। वीतरागी दशा - रागरहित की सबको जानना - ऐसी ज्ञान की दशा है। समझ में आया? यह तो उसकी शक्ति है न!

(प्रवचन का शेष अंश अगले अंकमें..)

श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१२८ पर पूज्य भाईश्री शशीभाई का कोयम्बतुर में प्रवचन दि: २६-१२-१९९७

श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत पत्रांक १२८ चल रहा है। (जीवको) कल्पनासे कितना तीव्र राग होता है कि जिसके प्रति राग हो उसके संयोग बिना जीना नहीं होगा इतनी हद तक राग होता है। कोई-कोई तो उस राग वशात् मृत्युको भी प्राप्त हो जाते हैं, लेकिन वह सिर्फ कल्पना होती है। जीव उसके संयोग बिना ही अनन्तकाल रहनेवाला है और रहेगा भी। उस कल्पनाका विचार करने पर भी इसके फलस्वरूप वैराग्यकी और उदासीनता की उत्पत्ति होती है।

अब द्वेष किस प्रकारसे होता है कि **''और जिसका मुख किसी कालमें भी न देखुँ....''** जिसका मुँह देखना भी नहीं चाहता, इसका मतलब कितना द्वेष होगा ? कि उसके सामने मैं देखना तक नहीं चाहता हूँ। सामने आ जाय तो उसे देखना भी नहीं चाहता हूँ। **''जिसे किसी कालमें मैं ग्रहण ही न करूँ;''** स्वीकार नहीं करूँगा, सामनेसे चलकरके गरजसे आयेगा तो भी मैं स्वीकार करनेवाला नहीं हूँ। **''उसके घर पुत्रके रूपमें, स्त्रीके रूपमें, दासके रूपमें, दासीके रूपमें, नाना जंतुके रूपमें क्यों जन्मा ?''** ऐसे ही कर्मोंका बंधन होता है कि उसके घर खुदको दीनता करनी पड़े ऐसी परिस्थितिमें जन्म लेता है, द्वेष बहुत किया हो, अधिकारबुद्धिसे द्वेष बहुत किया हो, तो उलटा उसके घर ही दासपने, दासीपने, स्त्रीके रूपमें या उसका कुत्ता होकर आये, घरका चूहा बनकर आ जाता है। द्वेष भावसे ऐसे कर्म बंधते हैं। और जो अभिमान किया हो, द्वेषपुर्वक जो अभिमान किया हो, उसकी जगह खुदको ही दीनता करनेकी बारी आती है। ये एक कुदरती व्यवस्था है। जो लोग बहुत अभिमान करते हैं, उनको ऐसे फल आते हैं कि जिसमें उसको

बहुत गरज और बहुत दीनता, या बहुत याचकवृत्तिमें आना पड़े, ऐसी परिस्थिति होती है।

पू. गुरुदेवश्री एक दृष्टांत देते थे कि जो बहुत अभिमान करता हो, बहुत मान करता हो कि जैसे मेरी कीमत सबसे अधिक होनी चाहिये, मुझे सबसे अधिक मान मिलना चाहिए वह जीव एकेन्द्रिय वनस्पतिमें जाता है और मुफ्तमें मूली में बिकता है। मुफ्तमें मूली बिकना इसका मतलब क्या ? कि एक जमानेमें ऐसा था कि कोई सब्जी लेने जाय, और दो-पाँच दस रुपयेकी सब्जी ले-ले तो बहुत खरीदी गिनी जाती थी, (अगर) पाँच-दस रुपयेकी सब्जी खरीदनेके बाद जैसे धनियापत्ती, या मिरची मुफ्तमें मांग लेते हैं वैसे कोई मूली मुफ्तमें मांग लेते थे। एक मूली दो। बच्चा साथमें है उसको मूली खाना है। उस मूलीके अंदर-पूर्वमें अभिमान किया हो वह भाईसाहेब बैठे होते है और एकेन्द्रियपने वहाँ उसकी स्थिति होती है।

सब्जी बेचनेवाला मुफ्त में जैसे दे देता है वैसी अभिमान करनेवालेकी दशा होती है।

''अर्थात् ऐसे द्वेषसे ऐसे रूपमें जन्म लेना पड़ा !'' द्वेषके कारण जन्म हुआ **''और वैसा करनेकी तो इच्छा न थी !''** बिल्कुल इच्छा नहीं थी। सत्ता भोगनी थी इसके बदले द्वेष करते हुए, द्वेष करते-करते खुद पर कोई सत्ता भोगे ऐसी परिस्थिति आ गई। दूसरेको परतंत्र किया। द्वेषसे क्या करता है? दूसरेको परतंत्र करनेके परिणाम करता है जब कि खुदको (ही) दीनताकी और उसके आगे परतंत्र होनेकी बारी आती है **''कहिये, यह स्मरण होने पर इस क्लेशित आत्माके प्रति जुगुप्सा नहीं आती होगी ?''** खुदको अपनेआप पर धिक्कार आता है, कि इस जीवने बिना सोचे-समझे यानी कि अविचारीपनेसे कैसे-कैसे विचित्र द्वेषके परिणाम किये हैं कि जिसके कारण खुद ही ज्यादा से ज्यादा दु:खी होता आया है। कैसी खुदकी मुर्खता! वास्तवमें तो क्या है ? वह खुदकी (ही) मुर्खता है। जब अभिमान करता है, द्वेष करता है तब मालुम नहीं रहता कि यह वास्तवमें मेरी मूर्खता है। और जब ये समझमें आता है तब खुदको अपनेआप पर घृणा आती है। और वैसी वर्तमान परिस्थिति उसको विशेष वैराग्यका कारण होती है।

इस प्रकारकी परिभ्रमणकी जो चिंतना चलती है वह अंत:करणको शुद्ध करती है। क्या होता है ? इस वैराग्य, इस पश्चाताप, इस चिंतना-वेदनाके परिणामसे अंत:करणकी शुद्धि होती है। अंत:करणकी शुद्धि होती है माने क्या ? कि आत्मकल्याणकी जो भावना है अथवा मोक्ष प्राप्तिकी, संसारसे छूटनेकी जो भावना है, वह अंत:करणसे उत्पन्न होती है। फिर उसमें ऊपर-ऊपरसे इच्छा नहीं रहती। क्योंकि इसमें ऐसा प्रकार भी है तो सही। कि कुछएक जीवोंको मोक्षमार्गमें आये हुए दूसरे जीवोंको देखकर खुदको भी वैसी इच्छा हो आती है, ऊपर-ऊपरसे इच्छा होती है जब कि अंत:करणकी मलिनता वैसी की वैसी होती है। पूर्वमें किये हुए अपराध के कारणसे जो मलिन परिणति बन गई है वह वैसी की वैसी जमी हुई, जाम हो चुकी है, उसको मिटानेके लिये, उसका निकाल करनेके लिये यह परिभ्रमणकी चिंतना आवश्यक है, इसके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। अंत:करणकी शुद्धिका इसके अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं है। वरना तो साक्षात् भगवान लेने आ जायेंगे तो भी ना कर देगा।

अन्यमतमें ऐसा एक दृष्टांत है। एक सेठ थे जो भगवानके भक्तरुप प्रसिद्ध थे। उनकी भक्ति तो प्रसिद्ध थी परन्त अंत:करणकी शुद्धि नहीं थी। वह अन्यमतमें तो ऐसा आता है कि भगवान परीक्षा करने आये कि सेठ! आपने सारी जिंदगी पर्यंत मेरी बहुत भक्ति की है। इसलिये चलिये हमारे विमानमें बैठ जाईये और चलिये वैकुंठमें ! तब सेठ कहने लगते हैं कि आपकी कृपासे पहले तो मुझे कोई संतान नहीं थी बल्कि अब है। वह बेटा अभी बहुत छोटा है। थोड़ा बड़ा हो जाय न ! और वहीवट संभाल ले फिर मैं आपके साथ चलूँगा। थोड़ी राह देखिये तो ठीक है। लड़का बड़ा होकर वहीवट-कारोबार सँभालने लगा कि भगवान फिरसे वापिस आये कि चलो सेठ! आपका लड़का तो अब बराबर तैयार हो गया है। तब सेठने कहा कि अभी तो उसकी सगाई की बातें चल रही हैं इसलिये सगाई करके शादी करा ले तो फिर मेरी जिम्मेदारी खत्म हो जाय, फिर मैं आपके साथ चलूँगा। भगवान ऐसा सोचे कि ठीक है ! एक चक्कर और काट लेंगे। शादी हो गई बादमें फिरसे भगवान वापिस आये, कहा चलो ! (सेठजी बोले) कि ऐसा है न ! लड़केकी बहूको बच्चा आनेवाला है। जरा पोतेका मुँह देख लूं फिर तो आपके साथ जरूर आनेका भाव है। वापिस दूसरी मुदत डाली। ऐसे ही वादे करते गये कि इतना कर लूं, इतना कर लूं! इसका सारांश क्या है ? आशय क्या है ? कि जीव शुद्ध अंत:करणसे आत्मक ल्याणके लिये तैयार नहीं होता है तब कुछ न कुछ वादे करता रहता है। इतना एक काम कर लूं, बादमें करूँगा ! एक इतना काम कर लूं बादमें करूँगा । अब उसको मालूम नहीं है कि उदयकी एक के बाद एक ऐसी पूरी कतार खड़ी है। उदय एक के बाद एक, एक के बाद दूसरा ऐसे चालू ही रहनेवाले हैं। ये हो जाय बादमें करूँगा, ये हो जाय

बादमें करूँगा। बादमें, बादमें करते-करते आयुष्य पूरा हो जाता है। वह सेठका आयुष्य पूरा हो गया और विष्टामें जाकर कीड़ा बना। भगवानको ऐसा हुआ कि चलो एक बार और कोशिश कर लेते हैं, इसलिये वहाँ पहुँचे और कहा क्यों सेठजी ! अब तो चलना है कि नहीं? तब क्या जवाब दिया मालूम है ? कि सेठके भवसे तो यह अच्छा है। वहाँसे तो मैं शायद आ भी जाता आपके साथ लेकिन यहाँ से तो निकलनेका मन ही नहीं करता है। ये क्या बताता है ? कि कितनी रुचि होगी ? तब वहाँ गया होगा। फिर तो रुचिके फलमें इतनी रुचि develop (बढ़) हो जाती है कि आगे उसको खुदको ही 'ना करनेका मन हो जाता है। बादमें करूँगा, बादमें करूँगा ऐसा कहनेवाला एक दिन ऐसा कह देगा कि अब नहीं करना है। यह परिस्थिति आती है। वह अरुचिको सूचित करती है। क्या सूचित करती है ? अरुचिको सूचित करती है। आत्मकल्याणकी रुचि नहीं है। और रुचि नहीं है मतलब कि जरूरत नहीं है यह अपनेआप साबित होता है। संसारकी रुचि बहुत है ऐसा भी उसमेंसे साबित होता है। (जो) ऊपर-ऊपरकी इच्छासे आत्मकल्याण करने की बात करते हैं, परन्तु अंत:करणकी शुद्धि नहीं है उनको प्रामाणिकपने, ईमानदारीसे संसार छोड़ना है यह बात नहीं रहती है। उसे खुदको संसारकी मिठास है ऐसा मानना। अंत:करणकी शुद्धि हुए बिना वास्तवमें जो मोक्ष प्राप्त करनेका ध्येय बाँधना है वह ध्येय नहीं बंधता। भले किसीको विकल्प आये, राग हो, इच्छा हो यह दूसरी बात है (परंतु) जिसको यथार्थरूपसे मोक्षका ध्येय बंधता है, उसका इस भूमिकामें मोक्ष प्रतिका पुरुषार्थ व प्रयत्न जो उठता है उसको संवेग कहा जाता है। उसे संवेगकी उत्पत्ति हुए बिना नहीं रहती। एकदम जोर आता है। क्यों आता है ? आनेका कारण क्या है? कि खुद जहाँ खड़ा है उस भूमिकासे मोक्ष कितना दूर है वह उसको दिखता है कि मुझे अभी बहुत अंतर काटना है और मेरे पास समय बहुत थोड़ा है। ऐसा जब मालूम पड़ता है तब उतावली सहज ही हुए बिना नहीं रहती। अपनेआप उतावली होने लगती है। कई मुमुक्षुओंकी ये फरियाद है कि सब समझते हैं लेकिन फिर भी संवेग नहीं आता है, जोर नहीं आता है इसका क्या करें ? कि पूर्णताके लक्ष्य बगैर, मोक्षके यथार्थ ध्येय बिना संवेगकी यथार्थरुपसे उत्पत्ति नहीं होती। और ऐसा लक्ष्य बाँधनेके लिये अंत:करणकी शुद्धि होना अनिवार्य है। इस तरह इस क्रम से पुरुषार्थकी उपलब्धि है, इसके सिवा पुरुषार्थ नहीं चलता। इच्छा हो तो भी नहीं - नहीं हो सकता, ऐसी व्यवस्था है। अत: इस प्रकारके पत्रोंमें कितनी गहराई है और लिखनेवालेका अनुभव कितना (सूक्ष्म) है यह सोचने जैसा (विषय) है।

जब इस प्रकारसे यथार्थ चिंतना आती है, वैराग्यकी उत्पत्ति, उदासीनताकी उत्पत्ति होती है तब, 'अब इस संसारमें से मुझे कुछ नहीं चाहिये,' अब बाकी बचे हुए समयमें, शेष आयुष्यमें मुझे आत्मकल्याण ही करना है ऐसी तीव्र भावनासे वह ध्येय बाँधता है। भले ही ! ऐसा होनेके पहले अंदरमें द्वंद्व चलें, ऐसा होना संभवित है। अब अगर वैसा द्वंद्व चलता है तो कैसा चलता है ? इसका (हूबहू चितार) आगेके वचनोंमें है।

''अधिक क्या कहना ? जो जो पूर्वके भावांतरमें भ्रांतिरूपसे भ्रमण किया; उसका स्मरण होने पर अब कैसे जीना यह चिंतना हो पड़ी है।'' इस जीवने भूतकालमें अनंत बार जन्म-मरण किया, लेकिन अब क्या करना? उसकी एक चिंतना हो पड़ी है - जो परिभ्रमणकी चिंतना है। उस चिंतनाके अंतमें **''फिर जन्म लेना ही नहीं और फिर ऐसा करना ही नहीं ऐसा दृढ़त्व आत्मामें प्रकाशित होता है।''** क्या कहा ? इस चिंतनाके फलस्वरूप किसी भी कीमत पर जन्म-मरण नहीं चाहिये, at any cost, कोई भी कीमत चुकानी पड़े, लेकिन अब ऐसे दु:ख कभी नहीं भोगने हैं ऐसी एक दृढ़ता (उत्पत होती है।) जब दृढ़ मुमुक्षुता उत्पन्न होती है तब ऐसी एक दृढ़ता आत्मामें प्रकाशित होती है ऐसा लिखा है। सिर्फ ऐसा राग होता है, या ऐसी इच्छा होती है, ऐसा नहीं लिखा लेकिन कैसे शब्द लिखे हैं ! इसका अर्थ ये होता है कि वह आत्मा, कि जो परिभ्रमणकी चिंतनामें आता है, वह अंदरसे पुकार

करता है कि अब मुझे छूट जाना है। अब मुझे इस परिभ्रमणसे छूट ही जाना है। वह आत्माकी-अंतरात्माकी पुकार है।

कृपालुदेव एक पत्रमें लिखते हैं कि 'जिसको छूटना है उसको बाँधने वाला कोई है नहीं'। सब बहाने खुदकी अरुचिके कारण हैं। सब बहाने अपनी भावनाकी क्षतिके कारण हैं, वरना जिसको छूटना ही है उसको कोई बँधन नहीं कर सकता और जिसको स्वयं बंधना हो उसको कोई छुड़ानेवाला है नहीं (जगतमें)। चाहे कितने भी समर्थ गुरु ही क्यों न हो? समर्थ ज्ञानी क्यों न हो, अरे ! तीर्थंकर हो तो भी छुड़ा नहीं सकते । भूतकालके अनन्त परिभ्रमणमें हमारा अनन्तबार विदेहक्षेत्रमें मनुष्यके रूपमें जन्म हुआ है, इतना ही नहीं बल्कि विदेहक्षेत्रका कोई क्षेत्र बाकी नहीं छोड़ा है, सभी क्षेत्रोंमें अनन्तबार जन्म लिया है, अनन्तबार समवसरणमें तीर्थंकरोंकी दिव्य-ध्वनि सुनी है, परन्तु वेदनापूर्वक अंत:करणकी शुद्धि नहीं की है। इसलिये जो थोड़ा बहुत असर हुआ हो उसको धुल जानेमें देर नहीं लगती। असर धुल जाती है। क्यों ? जिसको स्वयं बंधनमें रहना है उसको छुड़ानेवाले कोई नहीं हैं, और जिसको स्वयं छूटना है उसको बंधन करनेवाला कोई नहीं है।

''ऐसा दृढ़त्व आत्मामें प्रकाशित होता है। परन्तु कितनी ही निरूपायता है वह क्या करना ?'' कितनी ही निरुपायता है- उसमें क्या है, कि उस प्रकारके कर्मके उदय सामने हैं, कि एकदम उपेक्षित होकर निकल जाये, ऐसी परिस्थिति नहीं है। यानी कि मुमुक्षु जीव इतना बलवान नहीं होता (है) कि इस भूमिकामें मुनिदीक्षा लेकर, मुनिदीक्षा अंगीकार करके निकल जाय, ऐसा बलवानपना नहीं होता है तब क्या करना ? कि उसको अमुक adjustment करना पड़ता है। कोई व्यवस्था बिठानी पड़ती है और अपना कार्य आगे बढ़ाता है।

इस विषयमें थोड़ी ज्यादा स्पष्टता करना इस प्रकार आवश्यक है कि ध्येय और सिद्धांतमें छूटछाट नहीं होती। निर्णयमें भी छूटछाट नहीं होती, श्रद्धामें भी छूटछाट नहीं होती। छूटछाट तो executive stage (अमलीकरणकी भूमिका) में होती है। आचरण करते वक्त छूटछाट हो सकती है। जैसे मानो आपका ट्रेन(train) या हवाईजहाज(plane) छूट जाय ऐसी समयकी कटोकटी है इसलिये आप तेजीसे पहुँचना चाहते हो, बीचमें ट्राफिक(traffic) होता है, ट्राफिक सिग्नल भी आते हैं और आपको नहीं रुकना हो तो भी रुकना पड़े या कहीं पर गति कम करनी पड़ती है तब अगर आप वहाँ adjustment नहीं करते हो और (accident) अकस्मात कर देते हो तो बीचमें ही रह जाना होता है, या हमेशाके लिये बीचमें ही रह जाना होता है। और निश्चितरूपसे (definately) आपका ट्रेन या हवाईजहाज छूट ही जायेगा। अत: ट्रेन (गाड़ी) नहीं छूट जाय इसलिये भी आपको गति कम करके रुकना अनिवार्य बन जाता है। वह भी temporary होता है। आचरणकी भूमिकामें हमेशा मुमुक्षु हो या ज्ञानी हो, वह adjustment करते हैं परन्तु निर्णयमें फर्क नहीं पड़ता, लक्ष्य नहीं बदलता, श्रद्धा नहीं बदलती और सिद्धांत नहीं बदलते- उसको बराबर कायम रखते हैं कि ऐसा करना मतलब ऐसा ही करना। आचरणमें adjustment करना पड़ता है।

अत: **''जो दृढ़ता है उसे पूर्ण करना !''** दृढ़ता जो है वह वैसी की वैसी रहती है और उसे तो पूर्ण करना ही। जो ध्येय नक्की किया है उसको पूर्ण करना ही, जरूर पूर्ण करना, क्या ? **''अवश्य पूर्ण करना यही रटन है।''** माने वह बात निरंतर लक्ष्यमें है। **''परंतु जो कुछ आड़े आता है उसे एक ओर करना पड़ता है।''** रास्तेमें पेड़ गिरा हो तो या तो गाड़ी एक ओरसे लेनेके लिये घुमाना पड़े या तो एकबार गाड़ी रोकनी भी पड़े; या तो पेड़को खिसकाओ, एक ओर करो, या आप साईड़में से गाड़ी निकालो। **''जो कुछ आड़े आता है उसको एक ओर करना पड़ता है अर्थात् खिसकाना पड़ता है।''** आड़े आये उसको खिसकाना पड़ता है, उसकी व्यवस्था करनी पड़ती है। **''और उसमें काल व्यतीत होता है...''** उसमें (थोड़ा) समय भी लग जाता है ऐसी एक परिस्थिति पैदा हो जाती है। उसमें जो

भी समय जाता है वह बहुत कीमती समय जाता है ऐसा लगे बिना नहीं रहता, ऐसा लगे बिना नहीं रहता कि **''जीवन चला जाता है,''** मेरे मनुष्यभवका अमूल्य जीवन चला जाता है; बारबार ये मनुष्यभव मिले ऐसी परिस्थिति है नहीं, शायद ही कभी भाग्यवशात् मनुष्यभव मिलता है ऐसी परिस्थिति है, बारबार मिले ऐसी परिस्थिति नहीं है।

जिस मनुष्यभवमें आत्मकल्याण करनेकी बढ़िया से बढ़िया तक है उस मनुष्यभवमें आत्मकल्याणके लिये खुद negligence(बेदरकारी) में रहा अथवा दूसरे कामकी मुख्यतामें इसको अगर गौण किया तो मनुष्यभव वापिस नहीं मिलेगा ऐसी कुदरती व्यवस्था है। बारबार ऐसा अवसर नहीं मिलता। क्योंकि खुदने इस अवसरका लाभ नहीं उठाया, बल्कि बेदरकार रहा, (अगर) दरकार नहीं की तो फिर (अनंतकाल तक) मनुष्यभव नहीं मिलता है- ऐसी परिस्थिति है। इसलिये ऐसा लगता है कि बहुत महँगा **''जीवन चला जा रहा है उसे न जाने देना।''** उसको नहीं जाने देना चाहिये; ये सब मंथन चलता है, निर्धार होनेके वक्त ये सब मंथन चलता है फिर शुद्ध अंत:करणसे ध्येय बंधता है। **''जब तक यथायोग्य जय न हो तब तक, ऐसी दृढ़ता है, उसका क्या करना ?''** लेकिन करना क्या ? जीव एक तरफसे पूर्वकर्मके उदयके घेरेमें फसा हुआ है दूसरी तरफसे उसको ऐसी सूझ आयी होती है कि बहुत तेजीसे, शीघ्रतासे, जितनी हो सके उतनी शीघ्रतासे मुझे आत्मकल्याण कर लेना चाहिये।

प्रश्न :- ये लक्ष्य बाँधनेके बाद होनेवाले परिणाम हैं?

पू. भाईश्री :- नहीं। लक्ष्य तो अब बाँधेगा। लक्ष्य बंधनेके वक्तके परिणाम हैं। लक्ष्य बँधता है उस वक्त जो मंथन चलता है तब के परिणाम हैं। विचार किया है न। फिर उस विचार का निर्धार होगा। निर्धार जो होगा, बहुत जोरसे होगा। **''कदापि किसी तरह उसमेंसे कुछ करें तो वैसा स्थान कहाँ है कि जहाँ जाकर रहें ?''** (कोई) इरादापूर्वक प्रतिकूलता देवे उसको उपसर्ग कहनेमें आता है। कुदरती जो प्रतिकूलता खड़ी होती है उसको परिषह कहनेमें आता है।

''चाहे जो हो, चाहे जितने दु:ख सहो, चाहे जितने परिषह सहन करो, चाहे जितने उपसर्ग सहन करो, चाहे जितनी व्याधियाँ सहन करो'' शरीररोग आये, शरीर साथ नहीं देवे, चाहे कुछ भी हो आत्मकल्याण करना है करना है और करना ही है। मतलब शरीर प्रतिबंध उसमें गया। **''चाहे जितनी उपाधियाँ आ पडो.''** उपाधियाँ माने जिम्मेदारीयाँ। उन जिम्मेदारियों के बीचमें भी आत्मकल्याण करनेकी दृढ़ता वैसी की वैसी रहती है।

कृपालुदेव व्यापारमें बैठे थे न ! बम्बईसे ये पत्र लिखे हैं। बीस सालकी उम्रमें व्यवसायसे जुड़े थे और जैसे-जैसे आगे बढ़ते गये वैसे-वैसे वैराग्य बढ़ता गया। व्यवसाय-प्रवृत्तिसे छूटनेकी तीव्र भावना थी परंतु उसमें ही दस साल निकल गये। तीस साल की उम्रमें कह दिया था कि अब मेरी परिस्थिति किसी भी हालतमें व्यवसायमें भाग लेनेकी नहीं है, अब मुझे इससे छूट्टा कर दो, हिसाब-किताब करके मुझे छूट्टा कर दो। मेरे खाते जो भी कमाई इकट्ठी हुई है वह छोटेभाई के खातेमें जमा कर दो और मेरा खाता सरभर- nil कर दो। अभी तो तीस सालकी उम्रमें कोई-कोई लोग कमाई करनेकी शरुआत करते हैं। जब कि वे तीस सालकी उम्रमें निवृत्त होनेकी परिस्थितिमें थे। और २५ सालकी उम्रमें बहुत वैराग्य था। २४-२५ सालमें काफी वैराग्य था, कैसे भी करके छूट जाऊँ! कैसे भी छूट जाऊँ ! (ऐसा रहा करता था) परन्तु पूर्वकर्मके उदयका घेरा था कि उसमेंसे छूट नहीं सकते थे (बम्बईसे) साल भरमें एक-दो महिना निवृत्तिके लिये खंभात और चरोतर विस्तारमें चले आते थे। लेकिन बीचमें पोने-दो वर्ष तक बम्बईसे निकल नहीं पाये थे, यानी बीचमें एक साल खाली गया था। फिर दूसरे नौं महिने और निकल गये थे फिर करीब बरसातके दिनोंमें, श्रावण-भादों-आसौज महिनेमें करीब निवृत्ति के लिये निकले हैं। बरसातके दिनोंमें सबको व्यवसायमें धंधा कम होता है और उसको निवृत्तिके दिन गिने जाते हैं। बरसात के दिन-चार महिना धार्मिक दिन गिने जाते हैं। चार महिना सब लोग शांति

रखके कुछ न कुछ धर्म साधन करते हैं। बीचमें पोने-दो वर्ष में निवृत्ति नहीं मिल पायी है। पोने-दो सालके बाद बम्बईसे बाहर निकले थे तब जैसे प्रवृत्तिकी पछाड़ / मार लगी हो ऐसी परिस्थिति हुई थी, उसका उन्हें बहुत खेद हो रहा है, यह बात ज्ञानदशाकी है।

''चाहे तो जीवनकाल एक समय मात्र हो'' आयुष्य पूरा होनेकी तैयारी दिखती हो, तब संसारके कार्य जल्दी-जल्दी करना या आत्मकल्याण जल्दी-जल्दी कर लेना ? संसारके सभी कार्य प्रारब्ध अनुसार होनेवाले हैं, खुद करेगा तो ही होगा ऐसी भ्रांतिमें रहने जैसा नहीं है। घरका एक-एक सदस्य अपना-अपना प्रारब्ध लेकर आया है। उसका कारण उसके पास है। रोज-बरोज का दाखिला है कि घरमें एक ही बरतनमें बनी खिचड़ी दस लोग खाते हैं, उसमें एक को गेस होता है, और दूसरेको पेट साफ आता है, या एक को उल्टी होगी जब कि दूसरेको कब्ज होती है और तीसरेको टट्टी लग जाती है, जब कि खिचड़ी तो वही की वही सबने खायी है। सबका अपने-अपने पूर्वकर्म अनुसार चलता है। निमित्त एक जैसा होने पर भी उसके प्रत्याघात एक सरीखे नहीं होते। जब कि यह कुदरती व्यवस्था है, फिर मैं कर दूँ यह बात आयी कहाँसे ? यह सिर्फ अपनी कल्पना है। हम नहीं होंगे तो भी जो चलनेवाला है वही चलेगा। हमारे पिताश्री, दादाजी सब ऐसा ही मानते थे कि हम बैठे हैं तो सब ठीक-ठाक चल रहा है लेकिन उन सबके चले जाने के बाद भी जो भी जिसका ठीक चलनेवाला था तो चला और जिसका नहीं चलनेवाला था तो ठीक नहीं चला। उनके होनेसे भी अगर ठीक नहीं चलनेवाला होता तो ठीक नहीं चलता। उसमें किसीकी (होशियारी) काममें नहीं आती। प्रारब्ध पर विश्वास रखते हुए, और उस विश्वास के कारण उदासीनतामें आनेकी हमारी विचारधारा होनी चाहिये, जिसको सुविचारणा कही जाती है। क्या कहते हैं ? किसी भी हालातमें आत्मकल्याण की बात मुख्य होना और कोई भी परिस्थितिमें उसकी मुख्यतासे विचार करना, उसको ज्ञानीयों सुविचारणा कहते हैं।

चाहे कैसी भी परिस्थिति हो उसमें जो विचारवान जीव है वह ऐसा विचार करता है कि इस परिस्थितिमें मैं अपना आत्मकल्याण कैसे कर सकता हूँ ? **''जो प्रगटे सुविचारणा तो प्रगटे निजज्ञान''** आत्मज्ञान होनेका कारण ऐसी सुविचारणा है। खाना है तो भी आत्मार्थके हेतुसे, और उपवास करना है तो भी आत्मार्थके हेतुसे, कमाना है तो भी आत्मार्थके हेतुसे और निवृत्ति लेनी है तो भी आत्मार्थके हेतुसे, मेरा आत्मार्थ कैसे सधे उस एक लक्ष्यसे मुझे जो भी करना है सो करना है वरना नहीं करना है - ऐसी जो विचारणा चलती है, उसको सुविचारणा कहा जाता है। अगर ऐसी सुविचारणा होती है तो उसमेंसे आत्मज्ञान प्रगट होता है। **''जे ज्ञाने क्षय मोह थई पामे पद निर्वाण''** और उस आत्मज्ञानसे दर्शनमोह तो खतम हुआ, परन्तु चारित्रमोह भी खतम होकर आखिरमें निर्वाणपदकी प्राप्ति होगी। इस एक पदमें संक्षेपमें सुविचारणासे लेकर निर्वाणपद तक की पूरी (संकलना) रख दी है।

कृपालुदेवका विषयको प्रतिपादन करनेका सामर्थ्य भी असाधारण था। कोई भी विषयको व्यक्त करते थे तो उनका उपयोग चारों तरफ सभी पहलुओं पर फैल जाता था, इतनी गहराईमें जाता था !! विस्तार भी उतना और गहराई भी उतनी ही ! यह उनकी अनेक विशिष्टताओं में से एक विशिष्टता थी। बहुत विशेषताएं थीं। 'धन्य आराधना' पुस्तक में हमने बहुत सी बातें लिखी हैं। (इस पुस्तककी शरूआतमें कृपालुदेवका गुणसंकीर्तनरूपमें जो छपा है।) कृपालुदेवका गुण संकीर्तन - गुणोंका कीर्तन किया है। उस संकीर्तनके उपोद्घातमें हमने सब बातोंका उद्धरण किया है कि उनमें कौन-कौनसे गुण थे !!

''चाहे तो जीवनकाल एक समय मात्र हो, और दुर्निमित्त हो,...'' निमित्त की अनुकूलता न हो, दुष्ट निमित्त हो, प्रतिकूल निमित्त हो **''परन्तु ऐसा करना ही।''** ऐसा ही करना माने आत्मकल्याण ही करना। जन्म-मरण न हो ऐसा रास्ता पकड़ना ही। **''तब तक हे**

जीव ! छुटकारा नहीं है। इस प्रकार नेपथ्यमेंसे उत्तर मिलता है....'' यानी आत्मामेंसे, अंतरात्मामेंसे ऐसी आवाज आती है कि हे जीव ! तुझे यही करना है, दूसरा कुछ तुझे सोचना भी नहीं है। इसमें दूसरा विकल्प नहीं करना रहता है। **''और वह यथायोग्य लगता है।''** और ऐसी जो अंदरसे आवाज आती है, वह यथायोग्य लगता है, उसमें यथार्थता है। और वही यथार्थता वृद्धिंगत् होकर सम्यक्त्वके रूपमें परिणमित होगी।

मुमुक्षुकी भूमिकाकी यथार्थता और ज्ञानदशाकी भूमिकामें सम्यक्ता ये दोनों एक दूसरेसे अनुसंधान रखते हैं। उस यथार्थताका अनुसंधान सम्यक्त्वके साथ होगा। अत: यथार्थताकी कीमत है। किसकी कीमत है? यथार्थताकी कीमत है। उन्होंने जो पूरी योजना ली है वह पूरी यथार्थता पर है, वरना तो जीवका दर्शनमोह अयथार्थरूपसे तो अनेक बार मंद हुआ है, लेकिन फिर वापिस तीव्र हो गया है। मंद हुआ है और वापिस तीव्र हुआ है, फिरसे तीव्र हो गया है। चारित्रमोह भी अनन्तबार मंद हुआ है लेकिन वापिस तीव्र हो गया है। क्यों? कि यथार्थ लाईन (क्रम) हाथमें नहीं आयी इसलिये ऊटपटाँगरूपसे कुछ न कुछ किया है। तत्काल, उस वक्त तो ठीक लगा, लेकिन वापिस परिस्थिति वही की वही रही।

दृष्टांतरूपसे देखें तो मानो कोई एक जीव संप्रदायमें जन्म लेता है। भूतकालमें जैनधर्मकी अनुमोदना कर ली होगी जिसके फलमें जैनधर्ममें जन्म लेता है। फिर वह अपने वीतरागदेवके अलावा किसी अन्यको नहीं मानता। अगर मानता हो तब तो बात दूसरी है और वह तो बहुत ज्यादा खराब है। जो अनन्त संसारी होता है वही उस प्रकारसे मानता है लेकिन मानो कोई नहीं मानता है कि मेरे जिनपरमेश्वर के अलावा कोई दूसरा हो ही नहीं सकता। वीतरागदेव ही मेरे देव, कोई सरागी देव, मेरे देव नहीं हो सकते। ऐसा जब उसको परिणमन रहता हो तब उसका दर्शनमोह अवश्य घटता है। ठीक वैसे ही कोई पुण्यके योगसे ज्ञानी के समागममें आ जाता है और वह भी उसको ठीक लगता है कि ये ज्ञानीपुरुष हैं। भले ही पहचान न हुई हो लेकिन ये ज्ञानीपुरुष हैं और उनका बहुमान कर्तव्य है, बिना पहचान ही किसीकी संगतसे, किसीकी सोबतसे, कुटुम्बके संगसे या कैसे भी उस प्रकारमें आता है तब भी उसका दर्शनमोह घटता है। फिर भी वह यथार्थ प्रकारमें अगर नहीं आता है तो वह वापिस कब तीव्र हो जायेगा उसका पता नहीं रहता। एक बार temporary (कुछ समयके लिये) तो मंद हो जाता है क्योंकि दूसरे - कुदेव आदिको नहीं मानता है, दूसरे अज्ञानियोंको नहीं मानता है, और जब (वीतराग) देवकी भी भक्ति करें, ज्ञानीकी भक्ति करें, पूजा करें तब दर्शनमोह घटता है, बिलकुल नहीं घटता ऐसा नहीं है परन्तु क्रमसे, समझपूर्वक आगे बढ़े तो पूरी लाइन (क्रम) हाथ लग जाय ऐसा है । दर्शनमोह तीव्र तो नहीं हो परन्तु कटते-कटते, कटते-कटते सम्यक्दर्शन तक पहुँच जाता है। वरना अयथार्थरूपसे मंद हुआ हो तो वापिस तीव्र होते ही सब बेकार हो जाता है, जितनी भी कमाई की हो सब बेकार जाती है / हार जाता है।

प्रश्न :- क्या करनेसे दर्शनमोह बढ़ जाता है ?

पू. भाईश्री :- या तो वापिस कुसंगमें आ जाता है या खुदको अहम्भाव हो जाता है क्योंकि पर्यायबुद्धि तो है ही इसलिये या तो अहम्भाव आ जाता है कि मैंने इतना किया, मैंने इतना किया, मैंने इतना किया, ऐसा अहम्भाव दर्शनमोहको बढ़ाता है। खास करके पर्यायबुद्धिके कारण दर्शनमोह बढ़ता है। या तो कोई कुसंगमें चढ़ जाता है, नहीं करने योग्य व्यक्तियोंका संग कर लेता है और उसका रंग चढ़ जाता है और दर्शनमोह वापिस तीव्र हो जाता है। मैंने इतनी भक्ति की, मैंने इतना बहुमान किया, मैंने इतना समर्पण किया, ये सब गिनने लगता है- गिनते ही बस हो गई बात पूरी ! और वापिस दर्शनमोह तीव्र होने लगता है।

मुमुक्षुकी भूमिकामें भी भूमिका योग्य परिणाम होते हुए भी दर्शनमोह कहाँ-कहाँ, कैसे-कैसे घटता है और कहाँ-कहाँ, कैसे-कैसे बढ़ जाता है उसके ऊपर एक पूरा लेख (पुस्तिका) (हमने) लिखा है जिसका नाम 'प्रयोजन-

सिद्धि' है (जो कि पुस्तक के पिछले हिस्सेमें छपी है।) पूरा लेख दर्शनमोह पर ही है। मुमुक्षुकी भूमिकामें स्थूलपनेसे लेकर सूक्ष्मपनेतक कैसे-कैसे दर्शनमोह बढ़ता-घटता है, वैसे परिणाम और उसके समाधान साथमें दिये हैं। जिस प्रकार दर्शनमोह बढ़ता है (वह) और उसी प्रकारको तोड़नेके लिये कैसे दर्शनमोह घटता है यह विवरण दिया है। ७० से ७५ points - मुद्दे लिये हैं। बड़ा लेख बन गया इसलिये फिर छोटी पुस्तिका बना ली। उसको भी देख लेना तो समाधान हो जायेगा। उससे वह भी पता लगेगा कि हमें कौनसी भूमिकामें अभी क्या चल रहा है? कैसे चलता है ? उसमें हमारी कैसे घट-बढ़ होती है ? वह भी समझमें आ जायेगा। क्योंकि पूरी बात क्रमसे ली है। शरूआत ऐसे होती है, फिर आगे बढ़ता है, फिर और आगे बढ़ता है, फिर और आगे बढ़ता है तब प्रत्येक भूमिका में वह कैसे भूल करता है ? कि जिससे उसको नुकसान हो जाता है, और वह भूल कैसे मिटे तो नुकसान नहीं हो उस प्रयोजनभूत विषयका पूरा विस्तार लिया है। उसका विस्तार देखना हो और अपनी भूमिकाको check (जाँच) करना हो तो उस article (को)-(लेख) जो (पीछे प्रस्तुत है) उसे देख लेना। वह article (लेख) इस प्रकार लिखा गया है कि हमारे यह भावनगरमें नियमित स्वाध्याय चलता था इसके दौरान एक-एक बातमें ये प्रश्न आता था कि (यहाँ) इस बातका दर्शनमोहके साथ क्या सम्बन्ध है ? कोई भी न्याय चलता हो, किसी भी भूमिकाकी बात चलती हो, तब उसमें दर्शनमोह की परिस्थिति क्या है ? और उस दर्शनमोहमें तीव्रता आये, मंदता आये, तो उसमें कौन-कौनसे प्रकार हैं? हररोज इसकी चर्चा चलती थी, हमलोग शामको walking (घूमने) जाते थे तो उसमें भी यही चर्चा चलती थी। कितने ही पहलुओंसे बात चलती थी। तब सब को ऐसा लगा कि ये तो पूरा का पूरा याद नहीं रह पायेगा, और आप तो बातें करते जाते हो और हमलोग सुनते जाते हैं। फिर बादमें तो इतनी सारी बातें स्मरणमें रहनेवाली हैं नहीं। इसलिये व्यवस्थितरूपसे इस विषय पर कुछ लिखा जाय तो अच्छा है। जो कि दर्शनमोहके विषयमें permanent (कायमी) विचार करनेका एक साधन हो जायेगा। फिर (हमने) इसके पर लिखना शरू किया था।

प्रश्न :- ओघसंज्ञासे दर्शनमोह तीव्र होता है ?

पू. भाईश्री :- हाँ ! ओघसंज्ञासे तो तीव्र हो जाता है। मूल्यांकन आये तो मंद होता है। (देखिये) कितना सुंदर लिया ! मुमुक्षुकी भूमिकामें अंतरात्माका जोर कैसा होता है? मोक्ष (महल) की नीव (foundation) यहाँ डलती है। हमें अगर बहुत बड़ी इमारत खड़ी करनी है तो उसका foundation (उसकी नीव) सीमेन्ट-कोंक्रिट से मजबूत होना चाहिये। सिर्फ उसमें पत्थर डाल दिये और चूना डाल दिया ऐसा ही नहीं चलता। उसका पूरा engineering है। नीवके लिये पूरा सिविल-इन्जिनीयरींग है। और उसके जो तजज्ञ होते हैं उसके पास पूरी तैयारी करानी पड़ती है। फिर foundation (नीव) बराबर तैयार होता है तब जाके इमारत बहुत सालों तक, १००-२०० सालों तक रहनेवाली है, जब कि यह, तो ये अनन्तकाल तक रहनेवाले निर्वाणपदका foundation है-तो उस मुमुक्षुकी foundation की तैयारी कितनी जोरदार होगी, कितनी powerful होगी!! इसके लिये कृपालुदेवने ये वचन लिखें हैं। और जब भी हम अपने नये मकानकी या मंदिरकी नीवका पहला पत्थर रखतें हैं तब हम उसको celebrate करते हैं (उत्सव मनाते हैं)। करते हैं न ! 'मंगल शिलान्यास' ऐसे करके आमंत्रण पत्रिकाएं छपवाते हैं कि नहीं ? वैसे ये जो निर्धार होता है कि किसी भी कीमत पर मुझे मेरा आत्मकल्याण कर ही लेना है, और उसमें जो कुछ भी आड़े आयेगा तो मैं उसको एक ओर करके भी मेरा आत्मकल्याण कर लूंगा, अब पीछेहट तो नहीं करुंगा सो नहीं करुंगा। ऐसा जो निर्धार है वह मोक्षमार्गका मंगल शिलान्यास है और जो मुमुक्षुताका मंगल प्रारम्भ है।

हम लोगोंने जब 'आत्म जागृति' मासिक शरु किया था तब पहले अंकमें ही इस विषय पर 'मंगल प्रारम्भ' शीर्षकवाला article (लेख) प्रकाशित हुआ था। पहले और दूसरे अंकमें पूरा article (लेख) समाप्त हुआ है।

उसमें 'मंगल प्रारम्भ' ऐसा हमने शीर्षक दिया था। वह मंगल प्रारम्भ किसका? मुमुक्षुकी भूमिकाका, और मोक्षपदके प्रयाणका मंगल प्रारम्भ, महाप्रयाण है। कैसा प्रयाण है? महाप्रयाण है। उसका मंगल प्रारम्भ इस प्रकारके निर्णयसे होता है।

कृपालुदेवने बहुत सुंदर चितार रखा है। ऐसा जीव exactly-ठीक वैसे ही परिणाममें आता है और उसके अंतरात्मा में से ऐसी आवाज आती है कि हे जीव ! इसके बिना तेरा छुटकारा नहीं है। उसको इतना आत्मविश्वास भी आता है कि अब मेरा कल्याण अवश्य हो जायेगा, हो जायेगा और हो ही जायेगा। जिसको अंतरमेंसे अपने कल्याण सम्बन्धित ऐसा आत्मविश्वास आता है वह एक बहुत अच्छी निशानी है, बहुत अच्छा चिन्ह है, और उसकी अनुमोदना करने योग्य है। पू. गुरुदेवश्री तो ऐसा कहते थे कि आत्मकल्याणकी यह एक ऐसी बात है, ऐसी supreme quality की बात है कि इसमें अगर उत्साह आये, उमंग आये, और होश आये, उसका अंदर आत्मासे हकार आये, तो मोक्षकी भनक अंदरसे आने लगती हैं। क्या आने लगता है ? मोक्षकी भनक अंदरसे आने लगती है, और वह एक बहुत बढ़िया लक्षण है।

अत: यह पर नीवका पत्थर रखा, नीव की शिला रखी, अब उसके ऊपर इमारतका काम होगा। मुमुक्षु अपनी भूमिकामें आगे बढ़ेगा, उत्कृष्ट भूमिकामें आनेके पश्चात् मोक्षमार्गमें प्रवेश करेगा। इस प्रकार दर्शनमोहको क्षीण करके मोक्षमार्गमें प्रवेश करनेके बाद चारित्रमोहको भी क्षीण करनेमें नियमसे आगे बढ़ेगा। जिसको मोक्षमार्गका प्रारम्भ होता है उसका तब निर्वाणपदका registeration, booking, advance booking(आरक्षण) हो जाता है। टिकट यहाँ से मिल जाता है। reservation ticket (आरक्षण टिकट) यहाँसे मिल जाता है। वह मिलनेकी शक्यता यहाँ पर है लेकिन तैयारी खुदको करनी है। शुद्ध अंत:करणसे खुदको तैयारी करनेकी है। ऐसी एक वर्तमानमें परिस्थिति है। कुदरती जैन कुलमें आना हुआ, आत्मकल्याणकारी ऐसे ज्ञानीपुरुषोंके वचनोंका फुरसद लेकर विचार करनेका योग भी मिला, अब खुद कितना आगे बढ़ता है वह स्वयंके पुरुषार्थ पर निर्भर करता है। अत: जिसको यह कर लेने जैसा है, किसी भी कीमत पर कर लेने जैसा है ऐसा निर्णय होगा, उसका कार्य होगा, अवश्य ही होगा।

प्रश्न :- मोक्षकी भनक आने के बाद पहचान होती है ?

पू. भाईश्री :- भले पहचान बादमें हो तो भी दिक्कत नहीं है, पहचान तो बादमें होगी, यह तो अभी एकदम शरूआत की बात है। बहुत शरू शरूमें भनक आती है फिर पहचान तो हो जायेगी लेकिन एक बार लाईन हाथमें आ जाय। एक अंक सीखेगा तो, दो-अंक सीखेगा, दो अंक सीखेगा तो तीन-अंक सीख पायेगा, लेकिन सिर्फ शून्य, शून्य ही किये जाय और एक-अंक लिखना सीखे ही नहीं तो दो-अंक कहाँसे सीख पायेगा। इसके बाद दूसरी थोडी बातें लिखी है जो कलके स्वाध्यायमें लेंगे।

*

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (सितम्बर-२०२३, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंक की समर्पण राशि श्रीमती वंदनाबहिन रणधीरभाई घोषाल, कोलकाता की ओर से ट्रस्ट को साभार प्राप्त हुई है।
अतएव यह पाठकों को आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी विडीयो तत्त्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी. १४-A

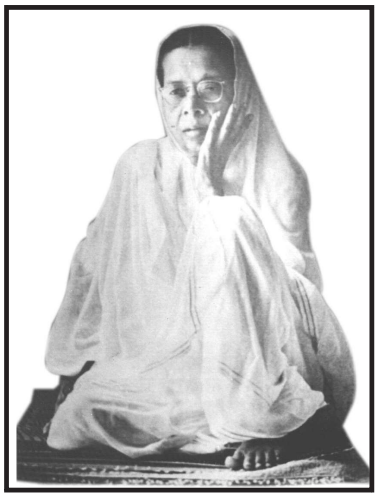

मुमुक्षु :- वह उसकी बारंबार भावना भाता है और भावनानुसार भवन होता है। इसलिये जैसी भावना वैसा भवन, उसका अर्थ क्या?

समाधान :- जिसे आत्मा की रुचि हो तो उसे उसकी ही भावना होती है। जैसी रुचि वैसी भावना। उसे पर ओर की रुचि हो तो उसकी भावना होती है। आत्मा की रुचि हो तो आत्मा की भावना होती है। आत्मा कैसे प्रगट करुँ? आत्मा का सम्यग्दर्शन कैसे प्रगट हो? ज्ञान कैसे प्रगट हो? ऐसी भावना होती है। और ऐसी भावना होनेसे उस रूप भवन-परिणति हुए बिना रहती नहीं। जैसी भावना होती है वैसा भवन होता है। जैसी रुचि वैसी उसकी भावना, वैसा उसका पुरुषार्थ और वैसी उसकी परिणति हुए बिना रहती नहीं। जैसी रुचि वैसा ही उसका पुरुषार्थ। रुचि अनुसार ही सब कार्य होता है। रुचि पर की हो, विभाव ओर की हो तो विभाव के कार्य होते हैं, विभाव की भावना होती है, विभाव की परिणति होती है। जैसी रुचि वैसा कार्य होता है।

ऐसा कहे कि हमारी रुचि बहुत है परन्तु कार्य नहीं होता। तेरी रुचि है, वैसी रुचि हो तो तेरी रुचि में क्षति है अथवा पुरुषार्थ करता नहीं, इसलिये होता नहीं। रुचि अनुसार भावना और भवन हुए बिना रहता नहीं।

मुमुक्षु :- रुचि और पुरुषार्थ दोनों चाहिये?

समाधान :- रुचि हो तो पुरुषार्थ हुए बिना रहता नहीं। सच्ची गहरी रुचि हो तो पुरुषार्थ होता ही है। रुचि मन्द हो तो पुरुषार्थ उसप्रकार का होता है। रुचि यथार्थ हो तो उसे भावना यही रहती है कि मुझे आत्मा कैसे प्रगट हो? आत्मा की खटक रहे, आत्मा की दिन-रात लगन लगे और सम्यग्दर्शन कैसे प्रगट हो? आत्मा का क्या स्वरूप है? आत्मा ज्ञानस्वभावी है, किसप्रकारसे है? उसके द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है? उसके विचार आते रहे। उस रूप पुरुषार्थ करे, उस जाति की परिणति प्रगट करने का प्रयास करे।

मुमुक्षु :- माताजी! आत्मा श्रद्धा अपेक्षासे त्रिकाली को विषय करे और ज्ञान द्वारा त्रिकाली को विषय करे?

समाधान :- किसका विषय? त्रिकाली का।

मुमुक्षु :- हाँ, त्रिकाली को। उसमें कोई अन्तर है? श्रद्धासे मैं आत्मा त्रिकाली ज्ञायक ही हूँ ऐसे विषय करे और ज्ञान यानी निश्चयनयसे मैं त्रिकाली हूँ ऐसे विषय करता है, तो इन दोनों में कुछ अन्तर है?

समाधान :- दोनों में कुछ अन्तर नहीं है। दृष्टि अपेक्षासे जैसे आत्मा को ग्रहण किया, उसप्रकारसे ज्ञान ग्रहण करता है। ज्ञान में ऐसा है कि ज्ञान सबको जानता है। दृष्टि एक को ही मुख्य रखती है, दृष्टि एक को ही ग्रहण करती है, अन्य किसीको ग्रहण करती नहीं। दृष्टि का विषय एक ही है। जिस आत्मा को मुख्यरूपसे ग्रहण किया उसे उसपर ही ज़ोर है, ज्ञान का ज़ोर भी उस पर है, लेकिन ज्ञान उसके साथ-साथ सब जानता है। इतना अन्तर है।

(तत्त्वचर्चाका शेष अंश अगले अंकमें...)

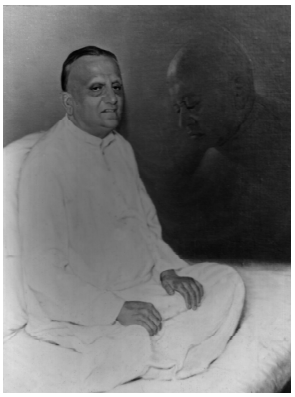

द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से 'आत्मा की रुचि'और 'पुरुषार्थका स्वरुप' सम्बन्धित पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी के चयन किये गये वचनामृत

रुचि तो उसको कहते हैं कि जिस विषय की रुचि होवे उसके बिना एक क्षण भी नहीं चल सके। पतंगा दीपक को देखते ही चोंट (झपट) जाता है, विचार नहीं करता। ऐसे ही, विचार...विचार करते रहने से क्या ? वस्तु को ही चोंट जावो ! पूरी की पूरी वस्तु में व्याप्त होकर (उसे) ग्रस लो ! (४४७)

*

रुचि अपने विषय में बाधक पदार्थों को फटा-फट हटा देती है, उनमें रुकती नहीं; (सीधे) अपने विषय को ही ग्रहण कर लेती है। (४५६)

*

रुचि अपने कार्य में बाधा नहीं आने देती है, वह संयोग को और विकल्पों को नहीं गिनती। (स्वरूप की) रुचि हो तो हर समय यही का यही (स्वरूप का) चिंतन चलता रहे। (४९७)

*

रुचि हो तो प्रवृत्ति में भी अपने कार्य में विघ्न नहीं आता। दूसरे से तो कुछ लेना नहीं है, और (स्वयं) सुख का धाम है। उपयोगरहित चक्षु की माफिक (बाहर से) प्रवृत्ति में दिखाई तो दे, परंतु उपयोग (सावधानी) तो इधर (अंतर में) काम करता रहे। (४९८)

*

(सहज पुरुषार्थ के विषय में आपने कहा :) पुरुषार्थ करुँ...पुरुषार्थ करुँ - यह बात भी नहीं है (सहज पुरुषार्थ का ऐसा स्वरूप ही नहीं है।) 'मैं वर्तमान में ही अनंत पुरुषार्थ का पिण्ड हूँ' (- ऐसे स्वाश्रय में) पर्याय द्रव्य की ओर ढल जाती है। इसलिए (उपदेश में) पर्याय की अपेक्षा से पुरुषार्थ करने का कथन आता है। (२२)

*

संसार में हर विषय में प्रयास करते हो तो इधर का (अंतर में स्वरूप का) प्रयास भी करो न ! इस प्रयास में तो उत्कृष्ट शुभभाव होता है, जो अन्य किसी जगह नहीं होता। यह भी है तो कृत्रिम प्रयास, लेकिन अकृत्रिम प्रयास के पहले यह भी आए बिना नहीं रहता। (३०८)

*

प्रश्न :- प्रयास तो करना चाहिए न ?

उत्तर :- अरे भाई ! कृत्रिम प्रयास से क्या होगा ? - उसपर वजन नहीं आना चाहिए। 'मैं वर्तमान में ही निष्क्रिय चैतन्य हूँ' वह (स्वरूप में) आया तो पर्याय में प्रयास सहज उठता ही है। 'मैं' तो अनंत पुरुषार्थ की खान हूँ न ! एक समय के प्रयास में थोड़े-ही आ जाता हूँ ? (३२४)

*

कहान रत्नसागरके अनमोल मोती....

दे पछाड़ पहलेसे! तू पामर है या प्रभू है? तुझे क्या स्वीकारना है? पामरताकी स्वीकृतिसे पामरता कभी जायगी नहीं! प्रभूताका स्वीकार करनेसे पामरता कभी खड़ी नहीं रह सकती। भगवान आत्मा - मैं स्वयं - द्रव्यसे परमेश्वर स्वरूप ही हूं, इस प्रकार जहाँ परमेश्वर स्वरूपका विश्वास आया वहाँ तू वीतराग हुए बिना नहीं रहेगा ही नहीं। (७)

*

अहो! इस मनुष्यभवमें ऐसे परमात्मस्वरूपका सेवन, उसका आदर करना वह जीवनका कोई धन्य क्षण है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है। ज्ञायक ही है ऐसा भास हो, चाहे जैसे प्रसंगमें भी मैं ज्ञायक हूँ....ज्ञायक हूँ - ऐसा भासित हो, ज्ञायकका लक्ष रहे तो उस ओर ढलता ही रहे। (३१)

*

भाई! तूने पंचमकालमें भरतक्षेत्रमें और निर्धन परिवारमें जन्म लिया है इसलिये हमारी आजीविका आदिका क्या होगा? ऐसा विचार न कर! तू वर्तमानमें और जब देख तब सिद्ध समान ही है, जिस क्षेत्रमें और जिस कालमें जब देख तू सिद्ध समान ही है। क्या मुनिराजको खवर नहीं होगी कि सब जीव संसारी हैं? भाई, संसारी और सिद्ध तो पर्यायकी अपेक्षासे हैं, स्वभावत: तो यह संसारी जीव भी सिद्ध समान शुद्ध ही हैं। (३३)

*

जिसे धर्म करना है, जिसे सम्यग्दर्शन लेना हो उसे पाँच इन्द्रियोंके विषयोंकी अभिलाषा तथा धन कमानेकी अभिलाषारूपी पापभाव तथा दया-दान-व्रतरूप पुण्यभावको एक बार दृष्टिमेंसे छोडना होगा। राग होने पर भी उसकी ममता छोड़! वे मेरे लिये अकिंचन हैं - मेरे लिये किंचित् मात्र नहीं हैं, मैं तो पूर्णानन्दका नाथ हूँ; रागका अंशमात्र मेरा नहीं है - इस प्रकार दृष्टिमेंसे धर्म-अर्थ-काम रूपी भावकी ममता छोड़ दे और ज्ञानस्वरूपी भगवानको ज्ञान परिणतिसे जान! इसके बिना तीनकालमें भी आत्मा जाननेमें नहीं आयेगा। (४४)

*

अहा! सहज ज्ञायक निजतत्वको समझनेका निर्णय और अनुभव करनेका अवसर मनुष्य भवमें प्राप्त हुआ है। जिस प्रकार चिन्तामणिकी प्राप्ति दुर्लभ है उसी प्रकार निगोदसे निकलकर त्रस पर्यायकी प्राप्ति भी अति दुर्लभ है। एक शरीरमें अनंत जीव, उनके ज्ञानका विकास अक्षरके अनन्तवें भाग, उनके दु:खोका वेदन वे सव्यं करते हैं और केवली जानते हैं। एक श्वासप्रमाण कालमें अठारह बार जन्म-मरण करते हैं - इस प्रकार जीव अनंतानंत काल तक निगोदके भवमें जन्म-मरणके दु:ख भोगते हैं। वहाँसे कोई जीव बाहर नीकलकर चिन्तामणी तुल्य दुर्लभ त्रसपर्याय पाता है। भाई! मनुष्यभव प्राप्त हुआ उसका मुल्य तेरी समझ में नहीं आता! मनुष्यभाव विषय-भोग, व्यापार-धंधा और पापके लिये नहीं है। (४५)

*

('द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर'में से साभार उद्धृत)

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2021-2023
RENEWED UPTO : 31/12/2023
R.N.I. NO. : 69847/98
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

... दर्शनीय स्थल...

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition :
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mobile phone 9374925041